International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 8 Issue 08 Ser. I || Aug. 2019 || PP 91-93

भारतीय संगीत पर यूरोपीयन प्रभाव

डॉ0 प्रभा वार्ष्णेय
एसोसिऐट प्रोफेसर
श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय,
अलीगढ़

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इस काल में अंग्रेजो के वर्चस्व ने देश के लोगों के मन मं यह धारणा जमा दी कि अंग्रेज श्रेष्ठ हैं तथा उनकी कला–संस्कृति भी उच्च स्तरीय है। इस विचार ने तमाम भारतीयों, विशेष रूप से कुलीन, शिक्षित, धनाढ्य और जमींदार वर्ग में, अंग्रेजी, संस्कृति, कला और साहित्य के प्रति आकर्षण को काफी बढ़ा दिया। फलतः इन वर्गो ने भारतीय संगीत के अपने परम्परागत लगाव को भुला दिया तथा वह यूरोपीय संगीत की ओर अधिक आकर्षित होने लगे।

अंग्रेजो के प्रभाव के अन्तर्गत सबसे प्रमुख सकारात्मक बात जो हुई वह भी भारतीय संगीत में स्पष्ट एवं सार्वदेशिक (यूनीफॉर्म) स्वरांकन। ब्रिटिश काल में यह स्वरांकन 1867 में ''गीत सूत्रधार के लेखक'' कृष्णधन बनर्जी द्वारा किया हुआ माना जाता हैं वह आधुनिक स्वरांकन प्रणाली तथा सहायक संगीत विधि के एक प्रकार से पिता थे।

यद्यपि यह चर्चा और विवाद का विषय है कि अंग्रेजों से पूर्व भारत में कोई सर्वस्वीकृत, स्पष्ट और सार्वदेशिक स्वरांकन प्रणाली थी भी अथवा नहीं कई विद्वानों का मत है कि भारत में स्वरांकन प्रणाली वैदिक काल से ही प्रचलित थी। कुछ अंग्रेज लेखकों यथा ई0 मौलिट और फेरिट जॉन्स ने इसका उल्लेख किया है। किन्तु इस विषय में कोई ठोस प्रणाम बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं हैं।4 केवल भारतीय संगीत के विकास और व्यापकता के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत में वैदिक या गुप्तकाल के समय से ही स्वरांकन प्रणाली का किसी न किसी प्रकार का आस्तित्व अवश्य रहा होगा। किन्तु यदि यह मान भी लिया जाय तो भी यह निश्चित है कि तत्कालीन भारतीय स्वरांकन प्रणाली, न तो सर्वस्वीकृत (यूनीफार्म) थी और न ही सटीक, परिष्कृत और वैज्ञानिक। वस्तुतः यह श्रेय तो हमें यूरोपीयों को देना ही होगा जिनके प्रभाव के अन्तर्गत बंगाल के संगीत मनीषियों ने आधुनिक भारत की स्वरांकन प्रणाली को अविष्कृत किया और लोकप्रिय भी बनाया। कृष्णधन बनर्जी के उपरान्त यूरोपीय संगीत से परिचित राजा सुरेन्द्र मोहन टैगोर और क्षेत्र मोहन गोस्वामी ने भी इस दिशा में कदम उठाये। इसके उपरान्त 1880 में क्षेत्र मोहन गोस्वामी के ही अनन्य शिष्य काली प्रसन्न बनर्जी ने अंग्रेजों के प्रभाव में यूरोपीय स्वरांकन प्रणाली को ग्रहण करते हुए भारतीय संगीत में तीन रेखा प्रणाली का अविष्कार किया। जी0एल0 छत्रे ने गीतालिपि को लिखा, जिसे उनके भाई केरोपरान्त छत्रे ने पूरा किया। इसमें भी यूरोपीय व्यवस्था के आधार के ही नोटेशन तथा स्केल का प्रयोग सुझाया गया है।

इसके पश्चात तो लगभग प्रत्येक भाषा–भाषी में नयी–नयी स्वरांकन प्रणालियाँ प्रचिलित हो गयीं यहाँ यह भी दुहरा देना अनुचित नहीं होगा कि चाहे वह कोई भी स्वरांकन प्रणाली क्यों न रही हो, वैज्ञानिक स्वरांकन प्रणाली का जन्म ही यूरोप की देन थी, अतः प्रत्येक स्वरांकन प्रणाली अन्ततः अंग्रेजों के प्रभाव से कहीं न कहीं जुड़ी अवश्य है।

अंग्रेजो को वर्चस्व का दूसरा प्रभाव संगीत की शिक्षा के क्षेत्र पर भी हुआ। जैसा कि पूर्व में कहा भी जा चुका है कि घराना शिक्षा अंग्रेजों के प्रभाव के अन्तर्गत पहले तो पुष्ट हुई किन्तु जैसे – जैसे अंग्रेजों का प्रभाव निरन्तर व्यापक होता गया तथा उन्होंने अपनी नई शिक्षा प्रणाली को लागू करना शुरू कर दिया वैसे ही घरानों के पतन का बीज भी पड़ गया।

अंग्रेजों के प्रभाव में देश के अभिजात्य वर्ग ने अंग्रेजों के वाद्ययंत्रों और नृत्य को विशेष रूप से ग्रहण कर लिया। क्लब संस्कृति और बॉलरूम डांसिंग ने भारत के परम्परागत संगीत और संगीतज्ञों को द्वितीय श्रेणी पर धकेल दिया और वे आजीविका तक को दर–दर भटकने पर मजबूर हो गये। इसके अतिरक्त गिराजघरों में होने वाले संगीत का भी असर भारतीयों पर पड़ा तथा महिला संगीतज्ञों और शिक्षार्थियों को हेय दृष्टि से देखने की प्रथा समाप्त होने लगी जिसका वर्णन पूर्व शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से किया जा चुका है। बीसवीं शताब्दी में रेडियों और सिनेमा के जरिए भी भारतीय संगीत पर पश्चिमी संगीत की व्यापक छाया पड़ी और दोनों में एक प्रकार के मिश्रण की प्रक्रिया चलने लगी।

अंग्रेजों के प्रभाव के कारण ही देश में यूरोप के समान ही तमाम संस्थाओं तथा अकादमियों का निर्माण होने लगा। सन् 1860 के संस्था पंजीकरण अधिनिमय ने विभिन्न संस्थाओं के गठन तथा कार्य संचालन को आसान तथा विधिक बना दिया। फलतः इस प्रकार की संस्थायें संगीत के क्षेत्र में बनने और बढ़ने लगीं। सन् 1874 में पूना में गायन समाज तथा बंगाल में विभिन्न संस्था, एकेडेमी और संस्थानों का निर्माण यूरोपीय प्रभाव के ही कारण विशेष रूप से हुआ।

यूरोपीय संगीतकारों से प्रेरणा लेकर भारतीय संगीतज्ञों ने भी संगीत को केवल क्रियात्मक कला न मानकर उसका अकादकि पक्ष भी स्वीकार किया तथा भारत के तमाम संगीत और उसकी विधाओं को लिपिबद्ध करने का उपक्रम किया। अतः इस काल मं संगीत से सम्बन्धित तमाम पुस्तकों को भी रचना हुई।

घरानों की स्थितिः–

अंग्रेजी साम्राज्य स्थापन के प्रथम और प्रारम्भिक पक्ष में तो घराना परम्परा बहुत ही मजबूत और गोलबन्द हो गई। यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा िकइस काल के अन्तर्गत मुगलकाल में उत्पन्न घराना परम्परा अपने चरम शिखर पर जा पहुँची। इस कालान्तर्गत विभिन्न घरानों में आत्मकेन्द्रण की स्थिति इतनी बढ़ गई कि संगीत का कोई कितना भी जिज्ञासुवान, समर्पित और गुणग्राहक शिष्य क्यों न हो वह घरानों में प्रविष्टि होकर उस घराने की संगीत शिक्षा नहीं ग्रहा कर सकता था। घराने अपने आत्मअभिमान और दम्भ से इतने अभिभूत हो गये थे कि उन्हें यह भी खबर नहीं थी कि वे संगीत की हत्या और अपनी ही आत्महत्या कर रहे थे। घरानों तथा विशेष रूप से मुस्लिमों द्वारा स्थापित और संचालित कुछ घरानों में तो गोलबन्दी इतनी मजबूत थी कि उच्चस्थ कोटि के शिष्यों को भी उनका शिकार होना पड़ा।

प्रारम्भिक ब्रिटिश काल में घराना परम्परा मजबूत होने के तीन मुख्य कारण थे जो निम्न प्रकार हैं :–

1. अंग्रेजों की आरम्भिक सफलता से भारतीय जनमानस भयभीत विशेष रूप से का के अलम्बरदारों में भय और असुरक्षा का वातावरण व्याप्त हो गया। उन्हें भय हो गया कि कहीं पश्चिमी संस्कृति का विकराल दानव उनकी भारतीय कला संस्कृति को पूरा ही न निगल जाय। इस घबड़ाहट ने उन्होंने (विभिन्न संगीतकारों ने) अपनी सुरक्षा था अपनी कला और विधा के संरक्षण के लिये अपने को ही स्वयं ही घरानों में कैद में जकड़ लिया। इस किलेबन्दी से वे अपने को सुरक्षित समझने लगे।
2. मुगल साम्राज्य और राजे–रजवाड़ों के पतन से भारतीय संगीतकारों की अजीविका समाप्त होने लगी। अतः उनकी जो कुछ भी आजीविका बची थी या समाज में उनकी कला की वजह से उनकी जो कुछ भी बकत थी, उसे सहेज कर बचाये रखने के लिये उन्होंने यह बेहतर समझा कि वे उस विशिष्ट कला या विधा के एकमात्र एकाधिकार प्राप्त स्वामी बने रहें और मृत्यु के बाद अपना कोई वारिस छोड़कर मरें। उन्हें यह भ्रम था कि इस प्रकार अपनी विशिष्ट कला या विधा में वे किसी को भागीदार न बनाकर वे अपनी विशिष्टता और एकाधिकारपूर्ण स्थिति को निरन्तर बनाये रखेंगे। दुर्भाग्य की बात है कि उन्हें यह इल्म नहीं हुआ कि वे अपने और अपनी कला/विधा के प्रति एक बेहद संकरे और आत्मघाती मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। उमेश जोशी ने इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का बयान करते हुए लिखा है – '' वे (घरानेदार) इस झूठी प्रतिष्ठा और थोथे गौरव के फेर में पड़कर अपने पवित्र मार्ग से गुमराह हो गये और इतने गुमराह हुए कि आज तक सही रास्ते पर नहीं आ पाये हैं। देश में आज भी उनके घराने के अनुयायी प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। कुछ तो ऐसे हैं जिनके न संतान है और न जाति के वफादार शिष्ट ही। अतः वे अपनी कला अपने साथ लेकर मरेंगे। वे संगीतज्ञ यह समझ न पाये कि ज्ञान को छिपाकर, रखकर जो प्रतिष्ठा एवं गौरव प्राप्त होगा उसमें स्थायित्व न होगा, और इसमें भारतीय संगीत को कितनी बड़ी हानि होगी, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती, इस बात को कभी उन्होंने सोचा नहीं, वे संकीर्णता के दायरे में घूमते रहे। उनके सामने राष्ट्र और समाज हित का प्रश्न नहीं था। अगर घरानों की परिपाटी भारत में चालू न होती हो भारतीय संगीत के विशाल क्षेत्र में न जाने कितनी और महान विभूतियाँ अविर्भूत होतीं, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। कितने ही महान कलाकार अपने अमूल्य ज्ञान को अपने साथ लेकर ही मर गये।5
3. अंग्रेजों से पूर्वकाल में संगीत शिक्षा प्राप्त करते समय तथा उसके पश्चात् संगीतज्ञ किसी न किसी राज परिवार के संरक्षण में आ जाते थे जो एक प्रकार से उनकी आजीविका की गारण्टी लेते थे। किन्तु इनके पतन से उस्तादों को यह भय हो गया कि यदि वे अपने शिष्यों को सीधे–सीधे अल्पसमय में सिखा देंगे तो वह तुरन्त सीखकर अन्यत्र चला जाएगा तथा अन्य कोई कार्य भी करने लगेगा। यही वजह थी वे अपने शिष्यों को एक लम्बी प्रतीक्षा करवाते थे, उनसे निरन्तर सेवा करवाते और जब वे पूर्ण रूप से आश्वस्त हो जाते थे कि संगीत के अलावा अब शिष्य पर कोई विकल्प नहीं बचा, उसके पंख मृख हो गये हैं, उसकी भौगोलिक और व्यावसायिक गतिशीलता समाप्त हो गई है, वह बाकी दुनियाँ से बेगाना हो गया है, तब वे उसकी वास्तविक शिक्षा को प्रारम्भ करते थे।
4. उपरोक्त तीन करणों के अतिरिक्त इस चौथे कारण से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि यह घरानेदार उस्ताद न्यूनाधिक मात्रा में एक प्रकार की अति छुद्र पारिवारिक और साम्प्रदायिक संकीर्ण मनोवृत्ति का भी शिकार थे तथा किसी विशिष्ट विधा पर अपने परिवार वंश, जाति या सम्प्रदाय का एकाधिकार निरन्तर बनाये रखना चाहते थे। एक विशिष्ट विधा उस परिवार, वंश, जाति, सम्प्रदाय, गाँव, क्षेत्र की पहचान बन चुकी थी। वह अपने को इस पहचान से जोड़े रखने के नकारात्मक मोह से विमुक्त होने का लोभ संवरण नहीं कर सके।

सारांश में उपरोक्त कारण या जो भी अन्य कारण रहे हों अंग्रेजों के प्रारभिक काल से घराना परम्परा अपने चरम शिखर पर पहुँच गयी और यही काण था कि सम्भवतः प्राकृतिक उपचार के रूप में उसके टूटने की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गयी। घराने की परम्परा के शिकार और उसके पीड़ित तमाम संगीतज्ञों यथा पंडित रामकृष्ण वझे, विष्णु दिगम्बर पलुष्कर, नारायण राव भातखंडे आदि ने तमाम पुस्तकों और प्रकाशित साहित्य की रचना करके घरानों की ठेकेदारी को बेहद करारा झटका दिया। यह कोई महज संयोज नहीं है कि संगीत की अधिकांश पुस्तकों के लेखक हिन्दू संगीतकार ही हैं तथा उत्तर ब्रिटिश काल में हिन्दू संगीतकारों की बहुलता दिखाई देती है। इसकी वजह है कि अधिकांश घरानों पर मुस्लिम संगीतकारों का वर्चस्व था जिससे योग्य, गुणग्राहक हिन्दू शिष्यों को बड़ा कष्ट और तिरस्कार झेलना पड़ा। यही वजह थी कि उन्होंने तमाम पुस्तकों और संगीत के उत्कृष्ट साहित्य की रचना करके संगीत शिक्षा के द्वारा सभी उत्सुक और योग्य शिष्यों के लिये खोल दिये। उनके इस कार्य से घरानों की नीवें हिल गयीं और घरानों की किलेबन्दी ध्वस्त होने लगी।

पीड़ित हिन्दुओं को मुस्लिम घराना पद्धति से इतनी घृणा हो गई कि वे संगीत के सार्वदेशिक स्वरूप और सर्वउपलब्धता सुनिश्चित करने की दृष्टि से किसी भी संगीत या विधा पर किसी भी क्षेत्र, स्थान, नाम, जाति या साम्राज्य की मुहर लगाने के विरोधी हो गये। यहाँ तक कि वे नोबुल पुरूस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाम से जुड़े संगीत को रवीन्द्र संगीत की संज्ञा देने को अनुचित करार देने से भी नहीं चुकते।

सन्दर्भ :–

1. जोशी, उमेश : भारतीय सगीत का इतिहास
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत विशारद।
3. शर्मा, भगवत शरण – संगीत शास्त्र।
4. वीर, रामअवतार – भारतीय संगीत का इतिहास।